[2015] 15 एस. सी. आर. 555

पवन कुमार अग्रवाल

बनाम

सामान्य प्रबंधक-II और नियुक्ति प्राधिकरण, स्टेट

बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य

(2015 की सिविल अपील सं. 13448)

17 नवंबर, 2015

[न्यायमूर्ति वी. गोपाल गौड़ा और अमितावा रॉय]

सेवा कानून - कदाचार - जुर्माना - अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप है कि उसने एक उधारकर्ता का ऋण आवेदन भरा और बैंक की दूसरी शाखा के प्रबंधक को ऋण स्वीकृत करने के लिए प्रभावित किया, यह जानते हुए भी कि उधारकर्ता ने पहले उसकी शाखा से ऋण लिया था और इस प्रकार अपीलकर्ता बैंक के हितों की रक्षा करने में विफल रहा - इस बीच, अन्य शाखा के प्रबंधक के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही में, प्राधिकरण ने एक वर्ष की अवधि के लिए समयमान में एक चरण कम का मामूली जुर्माना दिया - हालांकि अपीलकर्ता के मामले में, पदच्युति का आदेश पारित किया गया - अपीलकर्ता ने रिट याचिका दायर की - उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने पाया कि जांच में अनुचितता थी क्योंकि अपीलकर्ता को साक्षियों की सूची और दस्तावेजों की प्रतियां नहीं दी गईं और 25% की सीमा तक सभी सेवा लाभों और पिछले वेतन के साथ बहाली की अनुमति दी गई - प्रत्यर्थियों की चुनौती पर खण्ड पीठ ने एक वर्ष के लिए एक वेतन वृद्धि में कटौती और बिना बकाया वेतन के बहाली का

जुर्माना लगाकर सजा को उपांतरित किया, क्योंकि वह पहले से ही पेंशन प्राप्त कर रहा था - अपील पर, माना गया: यह सेवा नियमों की प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं के घोर उल्लंघन में अपीलकर्ता को उचित अवसर से वंचित करने का मामला था - आरोपों पर जांच अधिकारी का निष्कर्ष वैधानिक नियमों और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन न करने के कारण दोषपूर्ण था - साक्ष्य के अभाव में पूर्ण वेतन के बिना बहाली का आदेश कानून में अनुचित था - उच्च न्यायालय को प्रश्नगत अवधि के लिए पूर्ण बकाया वेतन देने के बाद अपीलकर्ता को प्राप्त पेंशन की राशि में कटौती करनी चाहिए थी - खण्ड पीठ के आदेश को रद्द कर दिया गया और एकल न्यायाधीश के आदेश को बहाल कर दिया गया और पूर्ण बकाया वेतन के साथ बहाली देने के संबंध में संशोधित किया गया।

भारतीय स्टेट बैंक और अन्य बनाम के.पी. नारायणन कुट्टी 2003 (1) एससीआर 391: (2003) 2 एससीसी 449; *एस ए वेंकटरमन बनाम भारत संघ और अन्य* एआईआर 1954 एस.सी 375 : 1954 एससीआर 1150; *भारत संघ बनाम टी.आर. वर्मा* एआईआर 1957 एससी 882 : 1958 एससीआर 499; *पंजाब नेशनल बैंक बनाम कुंज* 1998 (1) पूरक एससीआर 22: (1998) 7 एससीसी 84; *विलियम विंसेंट विटारेली बनाम फ्रेड ए. सीटन, आंतरिक सचिव,* एट अल 359 यू.एस. 535 (1959); *आर.डी. शेट्टी बनाम अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा प्राधिकरण* 1979 (3) एससीआर 1014 :1979 (3) एससीसी 489; *दीपाली गुंडू सुरवासे बनाम क्रांति जूनियर अध्यापक महाविद्यालय (डी. ईडी.) एवं अन्य* 2013 (9) एससीआर 1: (2013) 10 एससीसी 324 - संदर्भित।

<u>निर्णय विधि संदर्भ</u>

2003 (1) एससीआर 391 परिच्छेद 11 को संदर्भित करता है

एआईआर 1954 एससी 375	परिच्छेद 11	का हवाला दिया गया
1958 एससीआर 499	परिच्छेद 12	को संदर्भित करता है
1998 (1) पूरक एससीआर 22	परिच्छेद 16	को संदर्भित करता है
(359 यू.एस. 535 (1959)	परिच्छेद 17	को संदर्भित करता है
979 (3) एससीआर 1014	परिच्छेद 18	को संदर्भित करता है
2013 (9) एससीआर 1	परिच्छेद 19	को संदर्भित करता है

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: 2015 की सिविल अपील संख्या 13448

2014 के रिट अपील संख्या 192 में गुवाहाटी में उच्च न्यायालय की गुवाहाटी प्रधान पीठ के दिनांक 26.11.2014 के निर्णय एवं आदेश से।

अपीलकर्ता की ओर से विजय हंसारिया, वरिष्ठ अधिवक्ता, शैलेश मडियाल, गौतम प्रभाकर, सुश्री स्नेहा के., अवनीश पांडे, अधिवक्तागण।

प्रत्यर्थियों की ओर से गौरव अग्रवाल, अधिवक्ता।

न्यायालय का निम्नलिखित आदेश पारित किया गया:

<u>आदेश</u>

1. अनुमति स्वीकृत।

2. विशेष अनुमति द्वारा यह अपील अपीलकर्ता द्वारा दायर की गई है क्योंकि वह गुवाहाटी में गुवाहाटी उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा 2014 की रिट अपील संख्या 192 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 26.11.2014 से व्यथित है जिसमें कहा गया था कि ऋण वितरित करने में प्रत्यर्थी (यहाँ अपीलकर्ता) की ओर से कोई लापरवाही नहीं हुई और उसने उचित कदम उठाए थे, हालाँकि, उस शाखा के अन्य प्रबंधक को दोषी पाया गया और उस पर कम जुर्माना लगाया गया, इसलिए मामूली जुर्माना प्रत्यर्थी

(यहां अपीलकर्ता) पर लगाया जाएगा। तदनुसार, उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ ने पदच्युति के दंड को एक वर्ष के लिए एक वेतन वृद्धि में कटौती के रूप में उपांतरित किया और अपीलकर्ता को बिना किसी बकाया वेतन के सेवा में बहाल करने का निर्देश दिया क्योंकि वह पहले से ही इस अवधि के लिए पेंशन ले रहा था और आगे स्पष्ट किया कि पदच्युति और बहाली की अवधि को पेंशन के प्रयोजन के लिए सेवा की निरंतरता के रूप में गिना जाएगा और तदनुसार बैंक द्वारा दायर रिट अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी जाएगी।

3. रिट याचिका में उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए 25% पिछले वेतन के साथ बहाली के आदेश को रद्द करते हुए उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा लगाए गए दंड के आदेश और निष्कर्ष के उपरोक्त भाग से व्यथित अपीलकर्ता द्वारा आक्षेपित निर्णय और आदेश की शुद्धता पर सवाल उठाते हुए दायर की गई, वर्तमान अपील अपीलकर्ता द्वारा विभिन्न कानूनी तर्कों का आग्रह करते हुए दायर की गई है।

4. लिस के पक्षकारों की ओर से आग्रह की गई प्रतिद्वंद्वी कानूनी दलीलों की सराहना करने के लिए आवश्यक संक्षिप्त तथ्य यह है कि अपीलकर्ता के खिलाफ दिनांक 28.10.2004 को आरोप पत्र जारी करके अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि उसने हॉलिडेगंज शाखा के शाखा प्रबंधक को प्रभावित किया था, जिस पर अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई और उसे ऋण देने में लापरवाही बरतने के आरोप में दोषी पाए जाने पर कम सजा का मामूली जुर्माना लगाया गया। उक्त कार्यवाही में, अपीलकर्ता उक्त प्रबंधक श्री प्रदीप कुमार दास का रक्षा प्रतिनिधि था। आरोप पत्र में संक्षिप्त आरोप यह था कि उन्होंने हॉलिडेगंज शाखा के शाखा प्रबंधक को अब्दुल कुद्दुस मोंडल के पिछले ऋण का खुलासा किए बिना नकद ऋण सुविधा स्वीकृत करने के लिए प्रभावित किया था और इसलिए वह बैंक के हितों

की रक्षा करने में विफल रहे थे। दूसरा आरोप गैरकानूनी तरीके से नकद सुविधा देने का था। उक्त आरोपों को छह आरोपों में विभाजित किया गया था जिन्हें आरोप पत्र में उद्धृत गया था। यहां अपीलकर्ता द्वारा उक्त आरोपों से इनकार किया गया था, इसलिए उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों की जांच के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा जांच अधिकारी नियुक्त किया गया था।

5. जांच अधिकारी ने पाया कि आरोप संख्या 1, 2, 4 और 6 साबित हैं तथापि आरोप संख्या 3 आंशिक रूप से सिद्ध है और आरोप संख्या 5 साबित नहीं हुआ है। उन्होंने पाया कि ऋण लेने वाले का ऋण आवेदन अपीलकर्ता द्वारा इस तथ्य के बावजूद लिखा गया था कि यह उसकी जानकारी में था कि ऋण लेने वाले ने पहले उसकी शाखा से ऋण लिया था और उसके बाद भी अपीलकर्ता की शाखा के साथ पहले के लेनदेन का खुलासा किए बिना अपीलकर्ता ने ऋण लेने वाले को पड़ोसी शाखा से अधिक धन उधार लेने में मदद की थी।

6. अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने यह विचार किया है कि आरोप संख्या 3 और 5 को भी अभिलेख पर मौजूद सामग्री से साबित माना जाता है, बिना अपीलकर्ता को यह कारण बताने का अवसर दिए कि उन आरोपों पर निष्कर्ष को उलट क्यों नहीं किया जाना चाहिए। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने यह विचार करने के बाद कि आरोप संख्या 3 और 5 साबित हो गए हैं, अपीलकर्ता को जांच रिपोर्ट भेज दी जिसके लिए अपीलकर्ता ने 22.11.2005 को जवाब प्रस्तुत किया।

7. इस बीच, हॉलिडेगंज शाखा के शाखा प्रबंधक श्री प्रदीप कुमार दास के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही में, जहां उधारकर्ता ने अपीलकर्ता के माध्यम से आवेदन भरवाया और अपीलकर्ता के बैंक की शाखा से उधार/ऋण का खुलासा किए बिना ऋण ले लिया, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने, श्री प्रदीप कुमार दास के खिलाफ

जांच पूरी करने के बाद, संचयी प्रभाव के बिना एक वर्ष की अवधि के लिए समय-मान में एक चरण कम का दंड दिया। जुर्माना यह कहते हुए लगाया गया था कि इससे उक्त दोषी प्रबंधक श्री प्रदीप कुमार दास की पेंशन पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।

8. दिनांक 05.01.2006 को अनुशासनिक प्राधिकारी ने अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत उत्तर को स्वीकार न करते हुए 3 वर्ष के लिए मूल वेतन कटौती का दण्ड लगाया। मुख्य सतर्कता अधिकारी ("सी.वी.ओ.") का विचार था कि अपीलकर्ता की ओर से अत्यधिक दुर्भावना थी क्योंकि उसने बैंक के हितों के खिलाफ काम किया था, इसलिए दिनांक 01.02.2006 के आदेश द्वारा उस पर कठोर बड़ा जुर्माना लगाने का निर्देश दिया गया था। तदनुसार, नियुक्ति प्राधिकारी ने अपीलकर्ता को सेवा से हटाने के लिए दिनांक 24.04.2006 का आदेश पारित किया। निष्कासन के उक्त आदेश के विरुद्ध अपीलकर्ता ने अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष एक अपील दायर की, जिसे मामले की योग्यता की जांच किए बिना और अपील के ज्ञापन में दिए गए कानूनी तर्कों पर विचार किए बिना दिनांक 18.11.2006 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया। 07.02.2007 को प्रत्यर्थी-बैंक ने पेंशन स्वीकृत की और अपीलकर्ता तब से पेंशन प्राप्त कर रहा है।

9. अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पुष्टि किए गए पदच्युति के आदेश से व्यथित होकर अपीलकर्ता ने मार्च, 2009 के महीने में गुवाहाटी उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की। बैंक ने उक्त रिट याचिका में जवाब के रूप में अपना हलफनामा दायर किया। दोनों पक्षों को सुनने के बाद, उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 04.03.2014 के आदेश द्वारा रिट याचिका को स्वीकार कर लिया और सभी सेवा लाभों और 25% की सीमा तक बकाया वेतन के भुगतान के साथ बहाली की अनुमति दे दी। विद्वान एकल न्यायाधीश ने प्रतिद्वंद्वी कानूनी विवादों पर ऐसी राहत देते हुए एक तथ्यात्मक निष्कर्ष दर्ज किया है जिसमें कहा गया है कि जांच में अनुचितता

थी क्योंकि साक्षियों की सूची और दस्तावेजों की प्रतियां अपीलकर्ता को नहीं दी गई थीं और जांच अधिकारी के निष्कर्ष को विकृत माना गया।

10. उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के उक्त निर्णय और आदेश की सत्यता को गुवाहाटी उच्च न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी द्वारा दायर रिट अपील में चुनौती दी गई थी। उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने प्रतिद्वंद्वी कानूनी दलीलों पर विचार करने के बाद विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश को प्रतिस्थापित करते हुए एक वर्ष के लिए एक वेतन वृद्धि में कटौती और बिना पिछले वेतन के बहाली का जुर्माना लगाया क्योंकि वह पहले से ही पेंशन प्राप्त कर रहा था। उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश को उपांतरित करते हुए पारित उक्त आदेश को अपीलकर्ता द्वारा इस सिविल अपील में विभिन्न कानूनी तर्कों के साथ चुनौती दी गई है।

11. अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री विजय हंसारिया द्वारा यह तर्क दिया गया है कि प्रतिद्वंद्वी कानूनी तर्कों पर विचार करने के बाद रिट याचिका में पारित आदेश में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा यह निष्कर्ष दर्ज किया गया है कि निष्पक्ष और उचित जांच करने के लिए वैधानिक आवश्यकताएं, साक्षियों की सूची और दस्तावेजों की प्रतियां अपीलकर्ता-अधिकारी को उपलब्ध नहीं कराई गईं, जिससे जांच की कार्यवाही दूषित हो गई है और अपीलकर्ता के खिलाफ दर्ज निष्कर्ष और आरोप विकृत हैं। उक्त निष्कर्ष साक्षियों की सूची और दस्तावेजों की प्रतियां प्रस्तुत न करने के निर्विवाद तथ्यों पर रखा गया है जो अनुशासनात्मक कार्यवाही के संचालन के लिए वैधानिक आवश्यकताएं हैं। उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने अभिलेख पर कोई सबूत दिए बिना गलती से इसे रद्द कर दिया है कि अपीलकर्ता अपने कर्तव्यों के निर्वहन में लापरवाही और कदाचार के अन्य कार्य कर रहा है और को विद्वान एकल न्यायाधीश के निष्कर्ष को यह मानते हुए उलट दिया है कि जांच का संचालन निष्पक्ष और उचित नहीं है और जांच करने में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन नहीं किया गया है जिससे

अपीलकर्ता पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने, इस तरह के निष्कर्ष को दर्ज करते समय यह मानते हुए कि जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए तथ्य का निष्कर्ष कि आरोप साबित हुए हैं, कानून में विकृत है, भारतीय स्टेट बैंक और अन्य बनाम के.पी. नारायणन कुट्टी, (2003) 2 एससीसी 449 के मामले में इस न्यायालय के फैसले का भी उल्लेख किया है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी को अनुशासनात्मक विनियमों के तहत प्रदान की गई प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों का पालन करना होगा। अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा अपीलकर्ता को दिए गए आरोप पत्र के जवाब पर विचार न करते हुए, जांच अधिकारी द्वारा यह मानते हुए कि आरोप साबित हुए हैं, गवाहों, के साक्ष्य के आधार पर निष्कर्ष दर्ज करके ऐसी अनुशासनात्मक कार्यवाही पर कार्रवाई की जाएगी, जिनके नाम अपीलकर्ता को सूचित नहीं किए गए थे और उन दस्तावेजों की प्रतियां उन्हें प्रदान नहीं की गई थीं जिन पर जांच अधिकारी ने भरोसा किया था जिससे अपीलकर्ता का मामला पक्षपातपूर्ण हो गया था, इसलिए अपीलकर्ता की सेवा शर्तों पर इसके गंभीर नागरिक परिणाम होंगे यदि छोटा या बड़ा दंड लगाया जाता है जिसमें अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित निष्कासन आदेश भी शामिल है। इसलिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि खंडपीठ ने, बिना दिमाग लगाए और वैध एवं ठोस कारण बताए, निर्विवाद तथ्यों पर ध्यान नहीं दिया कि जांच कार्यवाही में अपीलकर्ता को गवाहों की सूची और दस्तावेजों की प्रतियां प्रदान नहीं की गईं, इसने गलती से विद्वान एकल न्यायाधीश, द्वारा पारित आदेश को अपास्त कर दिया, जिन्होंने तथ्य का पता लगाने में वैध और ठोस कारण बताए हैं कि जांच निष्पक्ष नहीं थी और यह आचरण और अनुशासनात्मक विनियमों की वैधानिक आवश्यकताओं और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के साथ अनुपालन के अनुरूप नहीं है। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पहुँचा गया उक्त निष्कर्ष इस न्यायालय के कई मामलों में दिए गए निर्णयों द्वारा समर्थित है, विशेष रूप से

एस.ए. वेंकटरमन बनाम भारत संघ और अन्य, एआईआर 1954 एससी 375 के मामले में, इस न्यायालय ने इस प्रकार अवलोकन किया:

> "14. जैसा कि वर्तमान में कानून है जिसके लिए 1850 के अधिनियम 37 के तहत जांच की जा सकती है, एकमात्र उद्देश्य सरकार को एक लोक सेवक के दुर्व्यवहार के संबंध में एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचने में मदद करना है और उसे इस प्रकार सक्षम बनाना है कि उसे कारण बताने का उचित अवसर देने से पहले अनंतिम रूप से उस सजा का निर्धारण करें जो उसे दी जानी चाहिए जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 311 (2) के तहत आवश्यक है। इस अधिनियम के तहत जांच बिल्कुल भी अनिवार्य नहीं है और सरकार चाहे तो कोई अन्य तरीका अपनाने के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र है। यह केवल सुविधा का मामला है और कुछ नहीं। यह इस पृष्ठभूमि के खिलाफ है कि हमें लोक सेवक (पूछताछ), अधिनियम 1850 के भौतिक प्रावधानों की जांच करनी होगी और देखना होगा कि क्या जांच की प्रकृति और परिणाम से, जिस पर अधिनियम विचार करता है, यह कहना संभव है कि अधिनियम के तहत ली गयी कार्यवाही या निष्कर्ष निकाला जाना एक दाण्डिक अपराध के लिए अभियोजन और सजा के समान है।"

12. भारत संघ बनाम टी.आर. वर्मा, एआईआर 1957 एससी 882, इस न्यायालय ने कहा कि यदि कोई व्यक्ति जिसकी सेवाएं गलत तरीके से समाप्त कर दी गई हैं, वह अपने अधिकारों की पुष्टि के लिए कार्रवाई शुरू करने का हकदार है।

> "6. सबसे पहले, हमें यह देखना होगा कि अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका वर्तमान की तरह विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए

उचित कार्यवाही नहीं है। कानून के तहत, एक व्यक्ति जिसकी सेवाएं गलत तरीके से समाप्त कर दी गई हैं, वह अपने अधिकारों की पुष्टि के लिए कार्रवाई शुरू करने का हकदार है और ऐसी कार्रवाई में न्यायालय उन सभी राहतों को देने के लिए सक्षम होगा जिनका वह हकदार हो सकता है, जिसमें कुछ राहतें भी शामिल हैं जो रिट याचिका में स्वीकार्य नहीं होगी।

यह अच्छी तरह से स्थापित है कि जब एक वैकल्पिक और समान रूप से प्रभावशाली उपचार एक वादी के लिए खुला है तो उसे उस उपचार को आगे बढ़ाना चाहिए और विशेषाधिकार रिट जारी करने के लिए उच्च न्यायालय के विशेष क्षेत्राधिकार का उपयोग नहीं करना चाहिए। यह सत्य है कि किसी अन्य उपचार का अस्तित्व रिट जारी करने के न्यायालय के क्षेत्राधिकार को प्रभावित नहीं करता है; लेकिन, जैसा कि इस न्यायालय ने रशीद अहमद बनाम म्यूनिसिपल बोर्ड, कैराना, [1950] एस.सी.आर. 566 (एआईआर 1950 एससी 163(ए) में देखा था "रिट देने के मामले में पर्याप्त कानूनी उपचार का अस्तित्व ध्यान में रखा जाना चाहिए"। के.एस. राशिद एंड सन बनाम आयकर जांच आयोग, 1954 एससीआर 738 पृष्ठ 747 पर: (एआईआर 1954 एससी 207 पृष्ठ 210 पर)(बी) भी देखें। और जहां ऐसा उपाय मौजूद है, वहां अनुच्छेद 226 के तहत किसी याचिका में हस्तक्षेप करने से इनकार करना विवेक का एक अच्छा प्रयोग होगा, जब तक कि इसके लिए अच्छे आधार न हों। मौजूदा मामले में ऐसा कुछ भी नजर नहीं आता।दूसरी ओर, इस याचिका में निर्धारण का मुद्दा यह है कि क्या प्रत्यर्थी को अपना मामला प्रस्तुत करने के लिए

उचित अवसर से वंचित किया गया था, मुख्य रूप से इस प्रश्न पर केंद्रित है कि क्या उसे उन गवाहों से जिरह करने से रोका गया था, जिन्होंने आरोप के समर्थन में सबूत दिए थे।

यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर गंभीर विवाद है, जिसका साक्ष्य के बिना संतोषजनक निर्णय नहीं किया जा सकता। रिट याचिका में उस चरित्र के प्रश्नों पर निर्णय देना न्यायालयों की प्रथा नहीं है और यदि विद्वान न्यायाधीशों ने प्रत्यर्थी को एक मुकदमे के लिए संदर्भित किया होता तो यह वर्तमान मामले में विवेक का उचित प्रयोग होता।

इस अपील में हमें स्वयं वही रास्ता अपनाना चाहिए था और वही आदेश पारित करना चाहिए था जो विद्वान न्यायाधीश को पारित करना चाहिए था। लेकिन हम इस तथ्य से दबाव महसूस करते हैं कि प्रत्यर्थी को बर्खास्त करने का आदेश 16 सितंबर, 1954 को दिया गया था इसे रद्द करने की कार्रवाई अब समय-बाधित होगी। चूंकि उच्च न्यायालय ने मामले को गुण-दोष के आधार पर देखा है, हम गुण-दोष पर विचार करते हुए इस अपील का निपटान करने का प्रस्ताव करते हैं।

10. अब, इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रत्यर्थी और उसके गवाहों का साक्ष्य, साक्ष्य अधिनियम में निर्धारित रीति से नहीं लिया गया था; लेकिन उस अधिनियम का न्यायाधिकरणों द्वारा की गई जांचों पर कोई अनुप्रयोग नहीं है, भले ही वे प्रकृति में न्यायिक हों। कानून की आवश्यकता है कि ऐसे न्यायाधिकरणों को जांच के संचालन में प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन करना चाहिए और यदि वे ऐसा

करते हैं तो उनके निर्णय पर इस आधार पर महाभियोग नहीं लगाया जा सकता है कि अपनाई गई प्रक्रिया उसके अनुरूप नहीं थी जो विधि न्यायालय में प्राप्त होती है ।

इसे व्यापक रूप से बताते हुए और इसे संपूर्ण होने का आशय किए बिना यह देखा जा सकता है कि प्राकृतिक न्याय के नियमों की आवश्यकता है कि एक पक्ष को सभी प्रासंगिक साक्ष्य जोड़ने का अवसर मिलना चाहिए जिस पर वह भरोसा करता है, प्रतिद्वंद्वी के साक्ष्य उसकी उपस्थिति में लिए जाने चाहिए और उसे उस पक्ष द्वारा परीक्षण गए गवाहों से जिरह करने का अवसर दिया जाना चाहिए और उसे समझाने का अवसर दिए बिना उसके खिलाफ किसी भी सामग्री पर भरोसा नहीं किया जाना चाहिए।

यदि ये नियम संतुष्ट हैं तो जांच इस आधार पर हमला करने के लिए खुली नहीं है कि साक्ष्य लेने के लिए साक्ष्य अधिनियम में निर्धारित प्रक्रिया का सख्ती से पालन नहीं किया गया था।"

13. अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने पुरज़ोर चुनौती दी कि अपीलकर्ता खंडपीठ द्वारा बकाया वेतन न दिए जाने और विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए 25% बकाया वेतन के अनुदान को रद्द करने और एक वर्ष के लिए वेतन वृद्धि की कटौती का जुर्माना लगाने से भी व्यथित है। उक्त निष्कर्ष को अभिलेख पर कोई सबूत न होने पर भी दर्ज किया गया है। उन्होंने तर्क दिया कि चूंकि पेंशन राशि पिछले वेतन के अनुदान का स्थान नहीं लेती है, विशेष रूप से प्रत्यर्थी-बैंक के पास किसी भी सामग्री के अभाव में पिछला वेतन अस्वीकार करने के लिए क्योंकि वह पदच्युति की तारीख से और विद्वान एकल न्यायाधीश और खंडपीठ द्वारा आक्षेपित निर्णय और आदेश पारित

होने तक लाभप्रद रूप से नियोजित था। इसके अलावा विद्वान एकल न्यायाधीश और खंडपीठ ने बिना किसी सबूत के बकाया वेतन से वंचित करने और वेतन वृद्धि रोकने का जुर्माना लगाने का कोई कारण नहीं बताया है इसलिए यह इस न्यायालय द्वारा कई मामलों में निर्धारित कानून के विपरीत है।

14. इसके विपरीत, प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव अग्रवाल ने उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित आदेश को उचित ठहराने की मांग की और प्रस्तुत किया कि खंडपीठ के आक्षेपित निर्णय और आदेश की शुद्धता को एक विशेष अनुमति याचिका दायर करके विभिन्न आधारों पर चुनौती दी गई है और वैकल्पिक रूप से यह तर्क देते हुए कि, यह मानते हुए भी कि इस न्यायालय द्वारा विशेष अनुमति याचिका पर विचार नहीं किया जा सकता है, तब भी उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने अपने असाधारण और पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार का, । यह ध्यान में रखते हुए कि अपीलकर्ता को 07.02.2007 से पेंशन का भुगतान किया गया है, मामूली जुर्माना लगाने और बहाली देते समय बकाया वेतन नहीं देने के मामले में, प्रयोग करते हुए न्याय किया है इसलिए उन्होंने राहत की मांग करते हुए अपीलकर्ता द्वारा दायर सिविल अपील को खारिज करने की प्रार्थना की, जैसा कि ऊपर बताया गया है ।

15. हमने लिस के पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर विचारपूर्वक विचार किया है और अभिलेख पर सामग्री का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है और विद्वान एकल न्यायाधीश और उच्च न्यायालय की खंडपीठ, दोनों द्वारा पारित किए गए आक्षेपित आदेशों की जांच की है।

16. अपीलकर्ता के खिलाफ 6 आरोप लगाते हुए 28.10.2004 को आरोप पत्र जारी किया गया था और यह निर्विवाद तथ्य है कि साक्षियों की सूची और दस्तावेजों की प्रतियां अपीलकर्ता को उपलब्ध नहीं कराई गईं थीं। इसके अलावा अनुशासनात्मक

प्राधिकारी ने अपीलकर्ता को मामले में कारण बताने का अवसर दिए बिना आरोप संख्या 3 और 5 के निष्कर्षों को उलट दिया है और उसके बाद सीवीओ की सलाह पर दिनांक 01.02.2006 की उनकी राय के अनुसार नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा निष्कासन का आदेश पारित किया गया था और आगे यह अभिलेख में लाया गया है कि समान रूप से रखे गए व्यक्ति श्री प्रदीप कुमार दास, हॉलिडेगंज शाखा के प्रबंधक, जिन्होंने श्री तपन कुमार संगमा को ऋण दिया है, उनके मामले में उन्होंने एक वेतन वृद्धि रोकने की कम सजा लगाई है जिससे यहां अपीलकर्ता के साथ अलग-अलग व्यवहार करने में भेदभाव हो रहा है, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है। इसके अलावा, यह अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री विजय हंसारिया द्वारा हमारे ध्यान में लाया गया है कि हॉलीडेगंज शाखा के प्रबंधक श्री प्रदीप कुमास दास ने जो ऋण राशि दी थी उसे श्री तपन कुमार संगमा ने 1,61,000/- रुपये ब्याज के साथ चुका दिया है। अनुमेय सीमा से अधिक ओवरड्राफ्ट साबित हुआ नहीं माना जाता है। संपूर्ण जांच रिपोर्ट की जांच करते समय विद्वान एकल न्यायाधीश के निष्कर्ष जिस पर प्रत्यर्थी-बैंक ने मजबूत भरोसा जताया है, विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपने असाधारण और मूल क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए मामले की गुण-दोष के आधार पर जांच की और भारतीय स्टेट बैंक सेवा नियम, के नियम 68(1)(IX)(ए) का हवाला दिया जिसमें यह अनुशासनात्मक प्राधिकारी को अपराधी को उन दस्तावेजों की सूची प्रस्तुत करने का आदेश देता है जिनके माध्यम से आरोप साबित करने का प्रस्ताव है। अपीलकर्ता का मामला यह है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी या जांच अधिकारी द्वारा साक्षियों की ऐसी सूची और दस्तावेजों की प्रतियां प्रस्तुत नहीं की गईं जो मामले के महत्वपूर्ण पहलू हैं जिसके आधार पर जांच अधिकारी द्वारा आरोपों पर निष्कर्ष दर्ज किया जाता है, उपरोक्त का हवाला देते हुए कहा कि यह अपीलकर्ता के खिलाफ साबित हुआ है। इसके अलावा श्री तपन कुमार संगमा के पक्ष में ऋण देने के संबंध में विद्वान एकल न्यायाधीश ने जांच

की और तथ्य के निष्कर्ष को दर्ज करते हुए कहा कि उक्त ऋणी से 2,13,595 रुपये की वसूली की गई और यह कहा गया है कि 15,450/-रुपये के बकाया ऋण की वसूली के लिए अब्दुल कुद्दुस मोंडल द्वारा प्रस्तुत पावर ऑफ अटॉर्नी का उपयोग कभी नहीं किया गया था, जो अपीलकर्ता की ओर से लापरवाही नहीं होगी, हालांकि, यह ऋण वसूली के लिए जिम्मेदार लोगों की लापरवाही होगी, एक छोटी अवैतनिक राशि को बैंक द्वारा बट्टे खाते में डालना पड़ा। इसके अलावा, ऋण के वितरण के समर्थन में प्रस्तुत राय/रिपोर्ट प्रदर्शनी डी-4 के संदर्भ में फूलबाड़ी शाखा से उधारकर्ताओं के पिछले ऋणों का स्पष्ट रूप से खुलासा किया गया, लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि न तो जांच अधिकारी और न ही अनुशासनात्मक प्राधिकारी या सी.वी.ओ. द्वारा उक्त राय/रिपोर्ट पर ध्यान दिया गया, जो हॉलीडेगंज शाखा प्रबंधक द्वारा अनुबंध वित्त के वितरण के लक्ष्य को पूरा करने के लिए अपने पड़ोसी शाखा प्रबंधक को सहायता प्रदान करने में अपीलकर्ता की कार्रवाई की प्रामाणिकता स्थापित करता है। इस दलील पर अपीलकर्ता की ओर से आग्रह किया गया कि एस.बी.आई. में एक से अधिक ऋण लेना प्रतिबंधित नहीं है। हॉलीडेगंज शाखा प्रबंधक द्वारा फूलबाड़ी शाखा से 2 उधारकर्ताओं द्वारा लिए गए पिछले ऋणों की पूरी जानकारी के साथ उनके लिए अनुबंध वित्त स्वीकृत किया गया था, विद्वान एकल न्यायाधीश ने शाखा की नियंत्रण रिटर्न फ़ाइल, साथ ही, जे.एन. हाई स्कूल खाता की बैंक की लेजर शीट प्रस्तुत न करने का भी उल्लेख किया है और श्री तपन कुमार संगमा ने अपीलकर्ता द्वारा मामले का प्रभावी ढंग से बचाव करने के लिए आरोपों पर जांच के समय अपीलकर्ता को बताया, इसे अपीलकर्ता के मामले में गंभीर पूर्वाग्रह के कारण के रूप में पेश किया गया था क्योंकि उक्त दस्तावेजों से यह स्थापित हुआ था कि उधारकर्ताओं ने पहले भी इसी तरह की ओवरड्राफ्ट सुविधा का लाभ उठाया था और किसी भी मामले में यह फुलबारी शाखा के प्रबंधक की अनुमेय विवेकाधीन क्षमता के भीतर था और किसी भी मामले में यह फुलबारी शाखा के प्रबंधक की अनुमेय

विवेकाधीन क्षमता के भीतर था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने भारतीय स्टेट बैंक और अन्य बनाम के.पी.नारायणन कुट्टी, (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा रखी गई निर्भरता के आधार पर, जिसमें इसे उपरोक्त नियमों के अनुसार वैधानिक आवश्यकताओं का अनुपालन न करने वाला माना गया है, अनुशासनात्मक प्राधिकारी की कार्रवाई प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों और सेवा न्यायशास्त्र के स्थापित सिद्धांतों के साथ असंगत है। उक्त मामले में, पंजाब नेशनल बैंक बनाम कुंज, (1998) 7 एससीसी 84, परिच्छेद 19 के मामले में इस न्यायालय के निर्णय से सहमति व्यक्त करते हुए उद्धृत किया गया था, जो इस प्रकार है:

> "19. उपरोक्त चर्चा का परिणाम यह होगा कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को विनियम 7(2) में पढ़ा जाना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप, जब भी अनुशासनात्मक प्राधिकारी किसी भी आरोप पर जांच प्राधिकारी से असहमत होता है तो ऐसे आरोप पर अपने स्वयं के निष्कर्षों को दर्ज करने से पहले उसे ऐसी असहमति के लिए अपने अस्थायी कारणों को दर्ज करना होगा और दोषी अधिकारी को प्रतिनिधित्व करने का अवसर देना होगा इससे पहले कि वह अपने निष्कर्षों को अभिलिखित करे। जांच अधिकारी की रिपोर्ट, जिसमें उसके निष्कर्ष शामिल हों, को अवगत कराना होगा और दोषी अधिकारी को जांच अधिकारी के अनुकूल निष्कर्ष को स्वीकार करने के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी को मनाने का अवसर मिलेगा। जैसा कि हमने पहले ही देखा है प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के लिए प्राधिकरण, जिसे अंतिम निर्णय लेना होता है और जुर्माना लगा सकता है, को कदाचार के आरोपी अधिकारी को एक अभ्यावेदन दायर करने का अवसर देने की आवश्यकता होती है इससे पहले कि

अनुशासनात्मक प्राधिकरण अधिकारी के खिलाफ लगाए गए आरोपों पर अपने निष्कर्ष दर्ज करे।"

17. विलियम विंसेंट विटारेल्ली बनाम फ्रेड ए. सीटन, आंतरिक सचिव, एट अल (359 यू.एस. 535 (1959)) में इसी तरह की तथ्यात्मक स्थिति से निपटते समय, विद्वान न्यायाधीश ने इस प्रकार टिप्पणी की:

"एक कार्यकारी एजेंसी को उन मानकों का कड़ाई से पालन करना चाहिए जिनके द्वारा वह अपनी कार्रवाई का मूल्यांकन करने का दावा करती है। सिक्योरिटीज एंड एक्सचेंज कमीशन बनाम चेनेरी कॉर्प, 318 यू.एस. 80, 87-88, 63 एस.सीटी. 454, 459, 87 एल. एड. देखें ।

626. तदनुसार, यदि रोजगार से पदच्युति एक परिभाषित प्रक्रिया पर आधारित है, भले ही ऐसी एजेंसी को बाध्य करने वाली आवश्यकताओं से परे उदार हो, उस प्रक्रिया का ईमानदारी से पालन किया जाना चाहिए। सर्विस बनाम डलेस, 354 यू.एस. 363, 77 एस.सी.टी. 1152, 1 एल.एड. दूसरा 1403 देखें।

प्रशासनिक कानून का यह न्यायिक रूप से विकसित नियम अब मजबूती से स्थापित हो गया है और यदि मैं इसमें कुछ जोड़ सकूँ, तो यह सही भी है। जो कोई प्रक्रियात्मक तलवार उठाएगा वह उस तलवार से नष्ट हो जाएगा।"

18. विटारेल्ली के मामले में उक्त निर्णय को इस न्यायालय द्वारा आर.डी. शेट्टी बनाम अंतर्राष्ट्रीय हवाईअड्डा प्राधिकरण, 1979 (3) एससीसी 489 में संदर्भित किया गया था, जिसका प्रासंगिक उद्धरण यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

"10 ..... प्रशासनिक कानून का एक सुस्थापित नियम है कि एक कार्यकारी प्राधिकारी को उन मानकों का सख्ती से पालन करना चाहिए जिनके द्वारा वह अपने कार्यों का मूल्यांकन करने का दावा करता है और किसी अधिनियम के उल्लंघन की स्थिति में उसे उन मानकों का ईमानदारी से पालन करना चाहिए। यह नियम श्री न्यायमूर्ति फ्रैंकफर्टर द्वारा विटेरल्ली बनाम सैटन में प्रतिपादित किया गया था जहां विद्वान न्यायाधीश ने कहा था:

'एक कार्यकारी एजेंसी को उन मानकों का कड़ाई से पालन करना चाहिए जिनके द्वारा वह अपनी कार्रवाई का मूल्यांकन करने का दावा करती है। तदनुसार यदि रोजगार से पदच्युति एक परिभाषित प्रक्रिया पर आधारित है, भले ही ऐसी एजेंसी को बाध्य करने वाली आवश्यकताओं से परे उदारता हो, उस प्रक्रिया का ईमानदारी से पालन किया जाना चाहिए। प्रशासनिक कानून का यह न्यायिक रूप से विकसित नियम अब मजबूती से स्थापित हो गया है और, यदि मैं इसमें कुछ जोड़ सकूँ, तो यह सही भी है। जो प्रक्रियात्मक तलवार उठाएगा वह तलवार से नष्ट हो जाएगा।"

इस न्यायालय ने ए.एस. अहलूवालिया बनाम पंजाब मामले में इस नियम को भारत में वैध और लागू माना और बाद में सुखदेव बनाम भगतराम, जे. में दिए गए फैसले में न्यायमूर्ति मैथ्यू ने श्री जस्टिस फ्रैंकफर्टर की उपर्युक्त टिप्पणियों को अनुमोदन के साथ उद्धृत किया। यह ध्यान दिया जा सकता है कि यह नियम, हालांकि अनुच्छेद 14 से निकले हुए भी समर्थित है, केवल उस अनुच्छेद पर निर्भर नहीं है। अनुच्छेद 14 से अलग इसका स्वतंत्र अस्तित्व है। यह प्रशासनिक विधि का एक नियम है जिसे न्यायिक रूप से कार्यकारी प्राधिकारी द्वारा मनमानी शक्ति के प्रयोग के खिलाफ जांच के

रूप में विकसित किया गया है। यदि हम श्री न्यायमूर्ति फ्रैंकफर्ट के फैसले की ओर मुड़ते हैं और इसकी जांच करते हैं तो हम पाते हैं कि उन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के समानता खंड से नियम के लिए समर्थन प्राप्त करने की मांग नहीं की है, बल्कि इसे पूरी तरह से प्रशासनिक विधि के नियम के रूप में विकसित किया है। यहां तक कि इंग्लैंड में भी, प्रशासनिक विधि में हालिया रुझान उसी दिशा में है, जैसा कि प्रोफेसर वेड के "प्रशासनिक विधि", चौथे संस्करण में पृष्ठ 540-41 में कही गई बातों से स्पष्ट है। ऐसा कोई कारण नहीं है कि हम अपने लगातार बढ़ते प्रशासनिक विधि के एक भाग के रूप में इस नियम को अपनाने में संकोच करें। आज कल्याण और सामाजिक सेवा कार्यों के जबरदस्त विस्तार, भौतिक और आर्थिक संसाधनों पर बढ़ते नियंत्रण और राज्य द्वारा औद्योगिक और वाणिज्यिक गतिविधियों को बड़े पैमाने पर संभालने के साथ, लोगों के जीवन को प्रभावित करने की कार्यकारी सरकार की शक्ति लगातार बढ़ रही है। सामाजिक-आर्थिक न्याय की प्राप्ति राज्य की नीति का एक सचेत अंत होने के कारण, उस आवृत्ति में एक विशाल और अपरिहार्य वृद्धि होती है जिसके साथ आम नागरिक राज्य सत्ता-धारकों के साथ सीधे मुठभेड़ के रिश्ते में आते हैं। इससे कार्यकारी सरकार की शक्ति की संरचना करना और उसे प्रतिबंधित करना आवश्यक हो जाता है ताकि इसके मनमाने ढंग से प्रयोग या प्रयोग को रोका जा सके..."

19. इसके अलावा, विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपीलकर्ता पर लगाए जाने वाले दंड पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा सी.वी.ओ. से मांगी गई राय की जांच की है, सी.वी.ओ. ने निष्कासन के प्रमुख दंड का सुझाव दिया है जो कि बैंक की अनुशासनात्मक कार्यवाही में लागू मानदंडों के साथ असंगत है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने शाखा प्रबंधक हॉलीडेगंज शाखा के संबंध में अनुशासनात्मक प्राधिकारी की कार्रवाई की जांच की जिसमें ऋणदाता श्री तपन कुमार संगमा, जो उक्त प्रबंधक के करीबी परिचित थे, को दूसरे ऋण की सुविधा प्रदान की गई थी, उसी आरोप को मामूली

चूक माना गया है, लेकिन अपीलकर्ता के संदर्भ में उन्होंने बड़ा जुर्माना लगाया है जो भेदभाव का स्पष्ट मामला है। अब्दुल कुद्दुस मोंडल और हसनुज्जमां के ऋण आवेदन पत्र लिखने के संबंध में अपीलकर्ता की स्वीकारोक्ति ताकि उन्हें हॉलिडेगंज शाखा से अनुबंध वित्त प्राप्त करने में सक्षम बनाया जा सके, अपीलकर्ता की ओर से दिए गए तर्क की जांच की गई और माना गया कि उक्त आवेदकों ने एस.बी.आई. की फुलबारी शाखा से क्रमशः रु. 10,000/- और रु. 15,000/- की हद तक ऋण लिया था, यह अनुमान लगाते हुए कि न्यूनतम नुकसान हुआ और दोनों ऋणों को मंजूरी दे दी गई, यह मानते हुए कि अनुशासनात्मक कार्यवाही उचित और निष्पक्ष थी अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ वकील ने तर्क दिया कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा वेतन कटौती की प्रस्तावित छोटी सजा को आरोपों के संदर्भ में उचित माना जाना चाहिए था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने राय/रिपोर्ट DEX-4 पर विचार करने के बाद माना कि जांच अधिकारी ने अपने निष्कर्ष को किसी भी आपत्तिजनक सामग्री पर आधारित नहीं किया और वास्तव में रिपोर्ट DEX-4 को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया गया जिससे अपराधी की बेगुनाही स्थापित हो जाती और आगे यह माना गया कि जांच अधिकारी ने महत्वपूर्ण दस्तावेजों की प्रतियां और गवाहों की सूची प्रस्तुत किए बिना जांच की। ऐसा प्रतीत होता है कि यह सेवा नियमों की प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं के घोर उल्लंघन में अपराधी को उचित अवसर से वंचित करने का मामला है। वह निष्कर्ष तथ्यात्मक, निर्विवाद तथ्यों पर आधारित है और कानून के अनुरूप है, इसलिए, हमारी राय में, विद्वान एकल न्यायाधीश ने सही माना है कि अपीलकर्ता के खिलाफ की गई जांच अनुचित थी और आरोपों पर दर्ज निष्कर्ष कानून में विकृत हैं। इस तरह के निष्कर्ष को दर्ज करते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह भी माना कि जांच को इस कारण से दूषित पाया गया कि हॉलिडेगंज शाखा के तत्कालीन शाखा प्रबंधक श्री प्रदीप कुमार दास से जांच में कभी पूछताछ नहीं की गई और उनके साक्ष्य के बिना, हॉलिडेगंज के शाखा

प्रबंधक द्वारा ऋण लेने वाले को वितरित ऋण पर अपराधी की दोषीता पर जांच अधिकारी सहित किसी के द्वारा उचित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सका और अभिलेख पर कोई कानूनी सबूत न होने पर सी.वी.ओ. के आधार पर बड़ा जुर्माना लगाया गया। साक्षियों की सूची और दस्तावेजों की प्रतियां उपलब्ध न कराने के कारण जांच ठीक से नहीं की गई इसलिए सी.वी.ओ. की राय के आधार पर अपीलकर्ता को सेवा से हटाने के लिए शक्ति का प्रयोग गंभीर परिणाम देगा। इसलिए के.पी.नारायणन कुट्टी (सुप्रा) पर भरोसा करते हुए, विद्वान एकल न्यायाधीश ने माना कि सी.वी.ओ. के दृष्टिकोण को स्वीकार करने और हटाने का आदेश पारित करने में की गई कार्रवाई मनमानी, अनुचित और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का घोर उल्लंघन है। ऐसा कहने के बाद, विद्वान एकल न्यायाधीश ने निष्कासन के आदेश को रद्द कर दिया और अपीलकर्ता को 25% बकाया वेतन के साथ बहाल करने की अनुमति दे दी क्योंकि यह दिखाने के लिए कोई सबूत नहीं था कि वह निष्कासन के आदेश की तारीख से लेकर विद्वान एकल न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के खंडपीठ द्वारा दिया गया निर्णय की तारीख तक लाभप्रद रूप से कार्यरत था। इसलिए यह दीपाली गुंडू सुरवासे बनाम क्रांति जूनियर अध्यापक महाविद्यालय (डी. ईडी.) और अन्य, (2013) 10 एससीसी 324, परिच्छेद 38 के मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के विपरीत है, जिसे यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

> "38. पूर्वोक्त निर्णयों से जिन पूर्वसर्गों को निकाला जा सकता है वे हैं:
>
> i) गलत तरीके से सेवा समाप्ति के मामलों में, सेवा की निरंतरता और बकाया वेतन के साथ बहाली सामान्य नियम है।
>
> ii) उपरोक्त नियम इस शर्त के अधीन है कि पिछले वेतन के मुद्दे पर निर्णय लेते समय, न्यायनिर्णयन प्राधिकारी या न्यायालय कर्मचारी/

कर्मकार की सेवा की अवधि, कदाचार की प्रकृति, यदि कर्मचारी/ कर्मकार के खिलाफ कोई मामला साबित हुआ हो, नियोक्ता की वित्तीय स्थिति और इसी तरह के अन्य कारक को ध्यान में रख सकता है।

iii) आम तौर पर, एक कर्मचारी या कामगार जिसकी सेवाएं समाप्त कर दी गई हैं और जो अपना वेतन वापस पाने का इच्छुक है, उसे निर्णय लेने वाले प्राधिकारी या प्रथम दृष्टया न्यायालय के समक्ष या तो दलील देनी होगी या कम से कम एक बयान देना होगा कि वह लाभकारी रूप से नियोजित नहीं था या कम वेतन पर नियोजित किया गया था। यदि नियोक्ता पूर्ण बकाया वेतन के भुगतान से बचना चाहता है तो उसे दलील देनी होगी और यह साबित करने के लिए ठोस साक्ष्य भी पेश करना होगा कि कर्मचारी/ कर्मकार लाभप्रद रूप से नियोजित था और उसे सेवा समाप्ति से पहले प्राप्त वेतन के बराबर वेतन मिल रहा था। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह स्थापित कानून है कि है किसी विशेष तथ्य के अस्तित्व का निर्धारण के सबूत का भार उस व्यक्ति पर निर्भर करता है जो उसके अस्तित्व के बारे में सकारात्मक अनुमान लगाता है। किसी नकारात्मक तथ्य को साबित करने की तुलना में सकारात्मक तथ्य को साबित करना हमेशा आसान होता है। इसलिए एक बार जब कर्मचारी यह दिखाता है कि वह नियोजित नहीं था तो नियोक्ता पर जिम्मेदारी आती है कि वह विशेष रूप से दलील दे और साबित करे कि कर्मचारी लाभप्रद रूप से नियोजित था और उसे समान या काफी हद तक समान वेतन मिल रहा था।

iv) वे मामले जिनमें श्रम न्यायालय/औद्योगिक न्यायाधिकरण औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 11-ए के तहत शक्ति का प्रयोग करता है और पाता है कि भले ही कर्मचारी/ कर्मकार के खिलाफ की गई जांच प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुरूप है और/या प्रमाणित स्थायी आदेश, यदि कोई हो, लेकिन यह मानता है कि सज़ा साबित हुए कदाचार के अनुपात से अधिक थी तो उसके पास पूरा पिछला वेतन न देने का विवेक होगा। हालाँकि, यदि श्रम न्यायालय/औद्योगिक न्यायाधिकरण को पता चलता है कि कर्मचारी या कर्मकार किसी भी कदाचार का दोषी नहीं है या नियोक्ता ने गलत आरोप लगाया है तो पूरा पिछला वेतन देने का पर्याप्त औचित्य होगा।

v) ऐसे मामले जिनमें सक्षम न्यायालय या न्यायाधिकरण को पता चलता है कि नियोक्ता ने वैधानिक प्रावधानों और/या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन किया है या कर्मचारी या कर्मकार को प्रताड़ित करने का दोषी है तब संबंधित न्यायालय या न्यायाधिकरण को पूर्ण बकाया वेतन का भुगतान करने का निर्देश देना पूरी तरह उचित होगा। ऐसे मामलों में, वरिष्ठ न्यायालयों को संविधान के अनुच्छेद 226 या 136 के तहत शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए और श्रम न्यायालय आदि द्वारा पारित पंचाट में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए क्योंकि कर्मचारी/कर्मकार को पूरा पिछला वेतन मिलने के अधिकार या उसका भुगतान करने का नियोक्ता का दायित्व पर एक अलग राय बनाने की संभावना है। न्यायालयों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि गलत/अवैध सेवा समाप्ति के मामलों में गलत करने वाला नियोक्ता है और पीड़ित कर्मचारी/कर्मकार है और कर्मचारी/ कर्मकार

को पूरी बकाया मजदूरी के रूप में उसका बकाया भुगतान करने के बोझ से मुक्त करके नियोक्ता को उसके गलत कामों के लिए प्रीमियम देने का कोई औचित्य नहीं है।

vi) कई मामलों में वरिष्ठ न्यायालयों ने प्राथमिक न्यायनिर्णयन प्राधिकारी के निर्णय में इस आधार पर हस्तक्षेप किया है कि मुकदमेबाजी को अंतिम रूप देने में लंबा समय लगा है, इस बात को नजरअंदाज करते हुए कि अधिकांश मामलों में पक्ष ऐसी देरी के लिए जिम्मेदार नहीं हैं। मामलों के निपटारे में देरी का प्रमुख कारण बुनियादी ढांचे और जनशक्ति की कमी है। इसके लिए वादकारियों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता या दंडित नहीं किया जा सकता। यह किसी कर्मचारी या कर्मकार के साथ घोर अन्याय होगा यदि उसे केवल इसलिए पिछला वेतन देने से इनकार कर दिया जाए क्योंकि उसकी सेवा समाप्ति और बहाली के आदेश को अंतिम रूप दिए जाने के बीच लंबा अंतराल है। न्यायालयों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि इनमें से अधिकांश मामलों में, नियोक्ता कर्मचारी या कर्मकार की तुलना में लाभप्रद स्थिति में है। वह पीड़ित की पीड़ा को लम्बा करने के लिए सर्वोत्तम कानूनी मस्तिष्क की सेवाओं का लाभ उठा सकता है यानी कर्मचारी या कर्मकार जो एक निश्चित मात्रा में प्रसिद्धि वाले अधिवक्ता पर पैसा खर्च करने की विलासिता वहन नहीं कर सकता है। इसलिए ऐसे मामलों में, हिंदुस्तान टिन वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम हिंदुस्तान टिन वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड के कर्मचारी, (1979) 2 एससीसी 80 में, सुझाए गए पाठ्यक्रम को अपनाना समझदारी होगी।

vii) जे.के.सिंथेटिक्स लिमिटेड बनाम के.पी.अग्रवाल, (2007) 2 एससीसी 433 में की गई टिप्पणी कि बहाल होने पर कर्मचारी/ कर्मकार सेवा की निरंतरता का दावा नहीं कर सकता क्योंकि यह ऊपर उल्लिखित तीन न्यायाधीश पीठों के निर्णयों के अनुपात के विपरीत है और इसे अच्छा कानून नहीं माना जा सकता। फैसले का यह हिस्सा किसी कर्मचारी/ कर्मकार की बहाली की अवधारणा के भी खिलाफ है।"

20. ऊपर बताए गए कारणों से हमने अभिलेख पर रखी गई सामग्री और पक्षों की ओर से आग्रह किए गए प्रतिद्वंद्वी कानूनी तर्कों के आधार पर मामले की जांच की है, हम मानते हैं कि वैधानिक नियमों और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन न करने के कारण आरोपों पर जांच अधिकारी का निष्कर्ष गलत है। साक्ष्य के अभाव में पूर्ण वेतन के बिना बहाली का आदेश कानून में अनुचित है। सबसे अच्छा, उच्च न्यायालय को प्रश्नगत अवधि के लिए पूर्ण बकाया वेतन देने के बाद अपीलकर्ता को प्राप्त पेंशन की राशि में कटौती करनी चाहिए थी। ऐसा न करने पर विद्वान एकल न्यायाधीश एवं खण्डपीठ के आदेश पूर्ण बकाया वेतन न दिए जाने के संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा अपास्त किये जा सकते है। तदनुसार, हम अपीलकर्ता को एक वर्ष के लिए एक वेतन वृद्धि में कटौती का जुर्माना लगाने वाले खण्डपीठ के आदेशों को रद्द कर देते हैं और इस हटाने की तारीख से अपीलकर्ता को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने की तारीख तक की अवधि के लिए पूर्ण बकाया वेतन के साथ बहाली के पारित के संबंध में विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश को बहाल और उपांतरित करते हैं, अपीलकर्ता को वेतन के आवधिक संशोधन के आधार पर और अपीलकर्ता को देय पिछले वेतन से पेंशन राशि काटी जाएगी। इस आदेश की प्रति प्राप्त होने की तारीख से आठ सप्ताह के भीतर अपीलकर्ता को इसका भुगतान किया जाएगा।

21. उपरोक्त शर्तों, निर्देशों और टिप्पणियों के तहत अपील स्वीकार की जाती है।

देविका गुजराल

अपील की अनुमति दी गई।

यह अनुवाद आर्टिफ़िश्यल इंटेलिजेंस टूल "सुवास" की सहायता से अनुवादक अधिवक्ता एन. एन. शर्मा द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण- इस निर्णय का अनुवाद स्थानीय भाषा में किया जा रहा है, एवं इसका प्रयोग केवल पक्षकार इसको समझने के लिए उनकी भाषा में कर सकेंगे एवं यह किसी अन्य प्रयोजन में काम नहीं ली जायेगी। सभी आधिकारिक एवं व्यवहारिक उद्देश्यों के लिए उक्त निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही विश्वसनीय माना जायेगा एवं निष्पादन एवं क्रियान्वयन में भी उसी को उपयोग में लिया जायेगा।